International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)
E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

# मध्यकालीन भारत में शिक्षा व्यवस्था की समीक्षात्मक अध्ययन

## आशा सुनारीवाल

सह आचार्य इतिहास
राजकीय महाविद्यालय सूरतगढ़ (श्रीगंगानगर) राज.
राजकीय कन्या महाविद्यालय चाकसू, (जयपुर) (कार्यव्यवस्थार्थ)

**शोध सारांश**

**मध्यकालीन भारत (लगभग 8वीं से 18वीं शताब्दी) का कालखंड राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत परिवर्तनशील रहा। इस युग में शिक्षा व्यवस्था पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। यह समय इतवंकसल दो प्रमुख चरणों में बाँटा जा सकता है – हिंदू राजाओं का काल और मुस्लिम शासन का काल (मुख्यतः दिल्ली सल्तनत और मुगल काल)। इन दोनों चरणों में शिक्षा की व्यवस्था, उद्देश्य, माध्यम और स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। भारत में मुस्लिम शासन स्थापित होने से पहले यहाँ प्राचीन व बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था ही चल रही थी, लेकिन मुस्लिम शासक भारतीयों से अलग भाषा व संस्कृति से संबंधित थे और उन्होनें उसी को बढ़ावा दिया। मुस्लिम शासकों ने मस्जिदें, मकतब व मदरसों का निर्माण कराया तथा इन्हीं के माध्यम से शिक्षण कार्य को प्रोत्साहित किया। प्राचीन भारतीय शिक्षा आश्रय न मिलने के कारण समाप्ति की कागार पर थी। फारसी भाषा को राजभाषा का दर्जा मिलने के कारण इसी का ज्ञान रखने वालों को राज्य में प्रशासनिक पदों की प्राप्ति होती थी । अतः भारतीय भी फारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आकर्षित हुए। इस्लामिक शासन के अन्तगर्त अनेक वंश के शासकों ने शासन किया और लगभग सभी ने शिक्षा के क्षेत्र में कुछ न कुछ योगदान दिया। सभी शासकों ने शिक्षा के महत्त्व को समझते हुए शिक्षकों व विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। केन्द्रीय शासन के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रीय शासकों ने भी शिक्षा की प्रगति के सराहनीय कार्य किए, इनमें बीजापुर, बंगाल, जौनपुर आदि बहुत प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र थे। मुगलकाल से भारतीय शिक्षा की रुपरेखा ही परिवर्तित हो गई थी। बाबर द्वारा श्शुहरत–ए–आमश नामक विभाग बनाकर प्रकाशन व नवीन विद्यालयों की स्थापना को बढ़ावा दिया गया। हुमायूँ ने पुस्तकालय बनवाया। अकबर के काल में हिन्दुओं की शिक्षा की तरफ भी ध्यान दिया गया। इस समय हिन्दू–मुसलमान विद्यार्थी साथ–साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। बाद में भी शासकों द्वारा अनेक सराहनीय कार्यों के द्वारा शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया।**

**Keywords: मध्यकालीन भारत में शिक्षा, प्राचीन भारतीय शिक्षा, इस्लामिक राज्य**

**शिक्षा की व्यवस्था – एक सिंहावलोकन:**

(क) प्रारंभिक मध्यकाल (8वीं –12वीं शताब्दी) : इस काल में शिक्षा मुख्यतः धार्मिक और आध्यात्मिक उद्देश्यों से जुड़ी थी। गुरुकुल, मठ, विहार और मंदिर शिक्षा के केंद्र थे। हिंदू शिक्षा पद्धति वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, दर्शन, आयुर्वेद, गणित और व्याकरण आदि पर केंद्रित थी। प्रमुख शिक्षण संस्थानों में नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, वल्लभी आदि प्रमुख थे। (ख) उत्तर मध्यकाल (13वीं–18वीं शताब्दी): मुस्लिम शासकों के आगमन से शिक्षा में इस्लामी प्रभाव दिखाई देने लगा। मक्तब (प्राथमिक) और मदरसे (उच्च शिक्षा संस्थान) स्थापित हुए। शिक्षा का माध्यम मुख्यतः अरबी और फारसी भाषा थी। विषयों में धर्मशास्त्र (कुरान, हदीस), तर्कशास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा (यूनानी तंत्र) शामिल थे।
शिक्षा व्यवस्था की विशेषताएँ –

**सकारात्मक पक्षः** धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर बल– शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण और धार्मिक ज्ञान था। 1. शिक्षक और शिष्य के मध्य घनिष्ठ संबंधरू विशेषकर हिंदू गुरुकुल परंपरा में यह संबंध अत्यंत आदर्शवादी था। 2. स्वतंत्रता और सादगीरू शिक्षा शुल्क प्रायः नहीं लिया जाता थाय ब्राह्मण या मौलवी अपनी सेवा के बदले में सम्मान प्राप्त करते थे। 3. विद्या के विविध विषयरू दोनों परंपराओं में दर्शन, गणित, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र, साहित्य, व्याकरण आदि विषयों पर बल था।

**नकारात्मक पक्ष–** 1. शिक्षा का सीमित प्रसार : 1. शिक्षा कुछ विशेष वर्गों (ब्राह्मण, उच्च जाति के मुसलमानों) तक सीमित थी। शूद्र, महिलाएँ और गरीब तबके शिक्षा से लगभग वंचित थे। 2. व्यावसायिक शिक्षा का अभाव : शिक्षा मुख्यतः धार्मिक थीय व्यावसायिक, तकनीकी या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से शिक्षा बहुत पिछड़ी थी। इससे समाज में तकनीकी प्रगति रुक गई और नवाचार की भावना का अभाव रहा। 3. स्त्री शिक्षा की उपेक्षा : दोनों परंपराओं में महिलाओं की शिक्षा पर लगभग कोई ध्यान नहीं दिया गया। केवल कुछ अपवादस्वरूप विदुषी महिलाएँ (जैसे अक्का महादेवी, मीराबाई) दिखाई देती हैं, पर संस्थागत समर्थन नहीं था। 4. रटंत प्रणाली पर जोर : मौखिक परंपरा पर जोर होने के कारण रचनात्मकता की अपेक्षा स्मरण शक्ति को अधिक महत्व मिला। यह शिक्षा को संकीर्ण और सैद्धांतिक बनाता था। 5. विज्ञान और प्रौद्योगिकी में पिछड़ापनः इस युग में भारत विज्ञान, गणित और खगोलशास्त्र में पहले की तुलना में पिछड़ने लगा। यूरोप में हो रहे वैज्ञानिक विकास से भारत का संपर्क बहुत सीमित था।

जब हम देश के इतिहास को देखते हैं, यह अतीत से वर्तमान तक के जीवन–दर्शन का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है । इतिहास, सिर्फ तिथियों एवं घटनाओं का चरित्र–चित्रण ही नहीं है, न ही यह केवल राजनीतिक घटनाओं का वर्णन है बल्कि यह तो किसी भी देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का एक पुंज होता है। इसी तरह शिक्षा की भी प्रकृति प्रत्येक देश व समाज की व्यवस्थाओं के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है, जोकि इनके बुनियादी सामाजिक–आर्थिक ढाँचे से प्रतिबिंबित होती है। प्राचीन काल में भारत देश में धर्म व आस्था को प्रमुख स्थान प्राप्त था, भारतीय सभ्यता और संस्कृति धर्म से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी । अतः वैदिक काल में मानव के ज्ञान का समस्त केन्द्र धर्म व आध्यात्मिकता आधारित रहा समय शिक्षा का उद्देश्य एवं केन्द्र बिन्दु धर्म के रहस्य को जानना एवं इसके मूल्यों को आत्मसात् करना रहा है । अल्तेकर महोदय ने श्एजुकेशन इन एंशियेण्ट इण्डियाश में लिखा है कि, श्प्राचीन भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक रोचक व महत्वपूर्ण सभ्यताओं में से एक है। इस सभ्यता के समुचित ज्ञान के लिए हमें इसकी शिक्षा पद्धति का अध्ययन करना आवश्यक है, जिसने इस सभ्यता को चार हजार वर्षों से भी अधिक समय तक सुरक्षित रखा, उसका प्रचार–प्रसार किया और उसमें संवर्धन किया।

प्राचीन काल में ऋषि–मुनि कुम्हार की भांति विद्यार्थियों के जीवन को नवीन आकार देते थे। आश्रम में उनका प्रवेश उपनयन ग्रहण करते थे। इससे विद्यार्थियों के संपूर्ण जीवनकाल में एक भद्र पुरुष बनने की प्रक्रिया चलती रहती थी । आश्रम की व्यवस्था में आध्यात्मिक शिक्षा व चारित्रिक शिक्षा की व्यवस्था थी, जिसमें वेद–पुराण, तर्कशास्त्र आदि का अध्ययन होता था। साथ ही शारीरिक शिक्षा के साथ–साथ सैनिक शिक्षा भी दी जाती थी जो उनके अन्दर राष्ट्रप्रेम और राष्ट्र की रक्षा की भावना को प्रबल करती थी। ऋषि मुनि अभिभावक की भूमिका निभाते थे । मनुस्मृति में कहा गया है ,

तत्र यद् ब्रह्म जन्मास्य मींजीबन्धनयिह्वतम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पितात्वाचार्य उच्यते ।।

अर्थात् उपनयन संस्कार से विद्यार्थी का दूसरा जन्म होता है और गायत्री उसकी माता व आचार्य उसका पिता होता है । अतः में गुरुओं को माता–पिता से भी ज्यादा आदर प्राप्त था। प्राचीन काल में ऋषि–मुनि कुम्हार की भांति विद्यार्थियों के जीवन को नवीन आकार देते थे। आश्रम में वेद–पुराण के अलावा आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, वनस्पति आदि की शिक्षा दी जाती थी, शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी । अतः शिक्षा का उद्देश्य एक सर्वगुण संपन्न मानव बनाने पर था। बौद्धकाल में विद्यार्थियों को आश्रम में रहकर ही कठोर अनुशासन में शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी। कुछ ही समय में बौद्ध मठ भारतीय जीवन शैली के बहुत बड़े केन्द्र रूप में उभर कर सामने आये । अब शिक्षा कुछ विशेष लोगों का अधिकार ना रहकर आम जनजीवन तक भी पहुँचने लगी थी, शिक्षा का स्वरूप अब व्यापक आधार लिए हुए था। बौद्ध विहार व मठों ने शिक्षा व्यवस्था को एक संस्थानिक आधार प्रदान किया जहां पर व्यक्तिगत सामर्थ्य, कुलीनता एवं जाति आदि कोई गुरु व आधार नहीं रह गया था। यहां पर सभी एक समान थे, शिष्य सभी साथ मिलकर रहते थे। इस समय शिक्षा के बड़े–बडे केन्द्रों का विकास हुआ जिनमें भारत से ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशों से भी छात्र विद्यार्जन करने आते थे।

**मध्यकालीन भारतीय शिक्षा**

भारत में अरबी व्यापारियों का आगमन तो काफी पहले से होता रहा है परन्तु दसवीं शताब्दी के अन्त से शुरू हुए महमूद गजनवी के आक्रमणों ने यहां पर मुस्लिम शासन स्थापित करने का रास्ता खोल दिया। जिसके फलस्वरूप बारहवीं शताब्दी में भारत में एक सशक्त इस्लामिक शासन की स्थापना हुई । महमूद गजनवी के साथ अनेक इस्लामी विद्वान भी भारत आए। इनमें अलबेरूनी का नाम सबसे प्रसिद्ध है। उसने भारत में जो कुछ भी देखा उसका विस्तार से वर्णन अपनी पुस्तक श्तहकीक–ए–हिंदश या शकिताबुल –हिंदश में किया है। उन्होंने भारत में शिक्षा के संबंध बहुत में कुछ इस तरह से व्याख्या की है कि षविद्याओं की संख्या बड़ी है और यह संख्या और भी बड़ी हो सकती है यदि जनता का मन इनकी ओर ऐसे समय पर फेरा जाए, जब सभी लोग इन्हें अच्छा समझते हो, उस समय जनता न केवल विद्या का सम्मान करती है बल्कि इसके प्रतिनिधियों को भी आदर दान देती है।'''अतः इससे स्पष्ट होता है कि मुस्लिम शासन के आरंभ होने से पहले तक भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था सुदृढ़ थी, मानव को हर प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। समाज में विद्वानों का आदर था और यह स्वरूप मध्यकाल में भी दिखाई देता है ।
भारत पर अरबी आक्रमणकारियों का लगातार आक्रमण यहाँ पर इस्लामिक राज्य स्थापित करने के साथ ही साथ उनका एक और प्रमुख उद्देश्य भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार व प्रसार करना था।श इस्लामिक राज्य स्थापित होने के बाद मुस्लिम संस्कृति को सर्वोच्च स्थान दिया गया एवं मुस्लिम शासक वर्ग के रूप में स्थापित हुए। इस्लामिक राज्य का प्रमुख उद्देश्य सांसारिक सुख और प्रगति को ऊपर रखना और मुसलमानों के लिए एक विशेष स्थान बनाना था। जिस समय भारत का शासन मुसलमानों के हाथों में आया, उस समय भारत में प्राचीन ब्राह्मणीय तथा बौद्ध शिक्षा ही प्रचलित थी। जबकि मुस्लिम शासक एक सर्वथा नवीन भाषा व संस्कृति के पोषक थे। इस सांस्कृतिक एंव भाषा की भिन्नता ने भारतीय सांस्कृतिक संस्थाओं, शिक्षण संस्थाओं को पर्याप्त क्षति पहुंचाई। धार्मिक कट्टरता के कारण अनेक प्राचीन भारतीय शिक्षा संस्थायें नष्ट कर दी गई। उनके स्थान पर मस्जिदें, मकतब व मदरसे बनवाए गए।

प्राचीन भारतीय शिक्षा को आश्रय न मिलने के कारण तथा संरक्षण के पूर्ण अभाव में संस्कृत व पालि आदि भारतीय भाषाएँ लुप्तप्राय हो गई । मुस्लिम शासन में फारसी भाषा को राजभाषा का दर्जा प्राप्त होने के कारण फारसी का ज्ञान रखने वालों को ही शासन–व्यवस्था में स्थान मिलता था । अतः हिन्दू भी फारसी के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुए और अनेक भारतीय भी अरबी व फारसी की शिक्षा ग्रहण करने लगे। मुस्लिम शासकों तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रयत्नों द्वारा शिक्षा में कुरान तथा अन्य इस्लाम धर्म के ग्रन्थों का समावेश किया गया। शिक्षा को धार्मिक आधार प्राप्त हुआ जिसके कारण शिक्षा की समुचित उन्नति न हो सकी। यद्यपि प्राचीन भारतीय शिक्षा संस्थायें मुस्लिम शासकों की धार्मिक कट्टरता के कारण मृतप्राय हो गई थी, तथापि इन परिस्थितियों में जिन विद्यालयों ने अपना अस्तित्व बनाए रखा, उनकी शिक्षण–प्रणाली में तत्कालीन शासकों ने कोई विशेष हस्तक्षेप नहीं किया ये संस्थाएं अपने आन्तरिक मामलों में पूर्णतः स्वतन्त्र थीं ।

इस्लामिक शिक्षा भारतीय पृष्ठभूमि से बिल्कुल अलग थी, फिर भी ऐसी बहुत सी समानताएं है जिससे इस्लामिक शिक्षा का भारतीय पृष्ठभूमि में विस्तार होता गया । वैदिक कालीन शिक्षा में उपनयन संस्कार से मिलता–जुलता संस्कार इस्लामिक शिक्षा व्यवस्था में भी पाया जाता था। इसमें शिशु को 4 साल 4 माह, 4 दिन के होने के बाद मौलवी उससे कुरान की आयतों को पढ़वाता था। इससे यह माना जाता था कि शिशु की प्रारंभिक शिक्षा का आरम्भ हो गया है। कभी–कभी जब बालक कुरान की आयतों को नहीं बोल पाता था तो उसे शबिस्मिल्लाहश कहने को कहा जाता था। इस तरह शिशु का मकतब में प्रवेश हो जाता था । यह व्यवस्था बौद्ध शिक्षा में श्प्रवज्या संस्कारश से भी मिलती–जुलती थी, जिसमें बौद्ध मन्त्रोंच्चारण के साथ बालक का मठ में प्रवेश होता था । मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था की बात की जाए तो पूरी शिक्षा व्यवस्था दो प्रमुख संस्थाओं द्वारा संचालित होती है जिसमें मकतब को प्रारम्भिक शिक्षा व मदरसे में होने वाली शिक्षा उच्च शिक्षा के रूप में जानी जाती थी । मदरसों का प्रबंध व्यक्तिगत तरीके से होता था, समाज के समृद्ध और प्रभावशाली लोगों द्वारा इसकी व्यवस्था की जाती थी। जबकि मकतब का सीधा संबंध मस्जिदों से था। जहां पर लेखन, गणित, अरबी व फारसी का प्रारंभिक ज्ञान दिया जाता था। साथ ही साथ इस्लाम धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से भी शिष्यों को अवगत कराया जाता था। मदरसे में सांसारिक और धार्मिक शिक्षा दी जाती थी । जिसमें व्याकरण, दर्शन, इतिहास, भूगोल एवं चिकित्सा आदि का ज्ञान कराया जाता था। इस तरह देखा जाए तो भारतीय परिस्थितियों से भिन्न होने के बावजूद भी इस्लामिक शिक्षा व्यवस्था में अपने सोपान है।श इस्लामिक शिक्षा व्यवस्था काफी हद तक मुसलमानों पर ही केंद्रित थी । अन्य धर्मों के लोग इस्लामिक शिक्षा

के सहज अंग नहीं हो पाते थे। हालांकि लंबे समय तक इस्लामिक शासन होने के कारण भारतीय जनमानस इस्लामिक शिक्षा व्यवस्था में भी काफी हद तक रच बस गया था। अधिकांश भारतीयों को उर्दू, अरबी एवं फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान होता था । यूनानी चिकित्सा पद्धति वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में स्थापित हो चुकी थी ।

इस्लाम धर्म में ज्ञानार्जन को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। अतः मुस्लिम शासकों ने भी ज्ञान का प्रसार करने के निमित्त सराहनीय प्रयास किया । जिस समय भारत में मुस्लिम शासन भली प्रकार से स्थापित हो गया तथा अनेक मुसलमान यहां बस्तियाँ बना कर रहने लगे और अनेक हिन्दु, मुसलमान धर्म के अनुयायी हो गये, तब यहां दोनों प्रकार के मुसलमानों की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज्ञान का प्रसार आवश्यक हो गया। फलतः अनेक मस्जिदें बनवाई गयीं, जिनके साथ मदरसे और मकतब भी खोले गये । इस प्रकार तत्कालीन शासकों ने शिक्षा द्वारा धर्म का वृहत् स्तर पर प्रचार किया। मुस्लिम शासन के अन्तर्गत अनेक वंश के शासकों ने शासन किया और लगभग सभी वंश के शासकों ने शिक्षा के क्षेत्र में कुछ न कुछ योगदान दिया ।

कुतुबुद्दीन ऐबक ने मुस्लिम शिक्षा का प्रसार करने का प्रयास किया । इल्तुतमिश के दरबार में विद्वान सम्मानित होते थे। तथा दिल्ली में एक मदरसा भी बनवाया गया। रजिया के समय श्मुईज्जी मदरसाश नामक एक शिक्षा–संस्था थी तथा उसके दरबार में भी विद्वानों का आदर था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ शतबकात – ए – नासिरी नासिरूदीन के दरबार में उसके ही निरीक्षण में लिखी गई थी । बलबन के समय में अनेक प्रसिद्ध विद्वान थे। उसके पुत्र स्वयं बड़े विद्या – प्रेमी थे तथा विदेश से भी विद्वानों को बुलाया करते थे । गियासुद्दीन तुगलक ने विद्वानों को पुरस्कृत किया तथा एक विद्यालय की नींव डलवाई द्य मुहम्मद तुगलक स्वयं बहुत विद्वान था और फिरोज तुगलक के शासन–काल में शिक्षा के ऊपर विशेष ध्यान दिया गया। विद्वानों को आर्थिक सहायता देकर फिरोज तुगलक उन्हें प्रोत्साहित करता रहता था। उसके संरक्षण में लगभग 18 हजार दास– बालक शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। लगभग 30 ऐसे मदरसों का निर्माण फिरोज शाह तुगलक द्वारा कराया गया जहां पर छात्र व शिक्षक साथ–साथ रहते थे। मस्जिद से जुड़े प्रत्येक मकतब एक शिक्षक को स्थायी रूप से नियुक्त किया गया था । फिरोज ने शिक्षा प्रसार से संबंधित विशेष नियम बनाए हुए थे । सुल्तान ने शिक्षा–संस्थाओं के संचालन का भार स्वयं ग्रहण किया तथा श्फतूहाते फिरोजशाहीश नाम से अपनी आत्मकथा लिखी। जिसमें सुल्तान ने अपने शासन काल के दौरान बनाए गए शिक्षालयों का वर्णन किया है। लोदी वंश के शासकों ने भी मदरसों का निर्माण कराया। सिकन्दर लोदी स्वयं कवि था, वह गुलरुख के उपनाम से कवितायें लिखता था । उसके द्वारा लिखा गया दीवान जिसमें 9000 पद्य है से उसकी विद्वता का परिचय मिलता है। इसके शासन काल में संगीत की पुस्तक श्लज्जत–ए–सिकंदरीश की भी रचना हुई थी । अतः सल्तनत काल में शिक्षा का पर्याप्त विकास हुआ ।

इतना ही नहीं केन्द्रीय शासन के अतिरिक्त तुर्क अफगान काल के अन्य छोटे–छोटे मुस्लिम राज्यों में भी शिक्षा की प्रगति के कुछ सराहनीय प्रयत्न किये गये । बीजापुर का संस्थापक मुहम्मद आदिल शाह एक सुसंस्कृत साहित्यिक व्यक्ति था । उसमें गद्य तथा पद्य दोनों को अच्छी भाषा में लिपिबद्ध करने की क्षमता थी । बीजापुर के द्वितीय सुल्तान इस्माइल आदिल शाह साहित्य और कला के प्रेमी थे। उनका दरबार कलाकारों व विद्वानों से सुशोभित था। इनके शासन काल की एक महत्वपूर्ण घटना यह थी कि राज्य की आय–व्यय का लेखा फारसी भाषा के साथ–साथ हिन्दी भाषा में भी रखा गया और इस कार्य को सम्पन्न करने हेतू योग्य ब्राह्मणों को रखा गया था । बहमनी राज्य के प्रमुख शासकों में मुहम्मद शाह बहमनी विद्या–प्रेमी था। उसके दरबार में विदेशी विद्वान भी रहते थे। अनाथों की शिक्षा का प्रबन्ध करने के अन्तर्गत उसने एक बड़ा मदरसा खोला, जिसमें योग्य शिक्षक नियुक्त किये गए तथा अन्य मकतब भी खोले गये और इन संस्थाओं की आवश्यक आर्थिक माँग की पूर्ति हेतु भूमि दे दी गई थी, जिसकी पर्याप्त आय से विद्यालय निजी व्यय सुविधापूर्वक वहन कर सकते थे ।

बंगाल मुस्लिम काल में शिक्षा के उन्नत शिखर पर था। बंगाल के शासकों में विशेष गुण एवं विशेषता यह थी कि उन्होंने मुस्लिम साहित्य के साथ–साथ हिन्दू साहित्य के सृजन में भी योगदान दिया । नासिरशाह ने महाभारत को बंग्ला में अनुवाद के लिए मालधर बसु नामक विद्वान को नियुक्त कर बंग्ला के हुसैन शाह ने भी भागवत पुराण के बंग्ला अनुवाद उत्थान का प्रयास किया। इस प्रकार बंगाल में उस समय मुस्लिम शिक्षा के साथ–साथ बंगभाषा की प्रगति का भी मार्ग प्रशस्त हो रहा था ।

इसके अलावा जौनापुर भारतवर्ष का एक प्रमुख शिक्षा–केन्द्र था । तजकीरात–उल्लमा के मतानुसार इब्राहीम शर्की के शासन–काल में जौनपुर में सैकड़ों मदरसे थे, जहाँ देश के प्रत्येक भाग से विद्यार्थी आकर विद्याध्ययन करते थे । शाहजहाँ जौनपुर को श्शिराज – ए – हिन्दश कहते थे । मालवा के संस्थापक महमूद खिलजी विद्या से बड़ा प्रेम करते थे, उन्होंने अनेक प्रकार से शिक्षा – प्रसार को प्रोत्साहित किया। फरिस्ता के अनुसार, उस समय मालवा साहित्यिक क्षेत्र में शिराज तथा समरकन्द के समकक्ष सुप्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्र था ।

इतना ही नहीं भारतीय शिक्षा के इतिहास की धारा ही मुगलकाल से बदल जाती है। मुस्लिम कालीन शिक्षा के इतिहास में सर्वथा एक नवीन अध्याय का समावेश इस काल में होता है । किसी भी मुस्लिम शासक के संरक्षण में शिक्षा को इतना प्रोत्साहन नहीं मिला, जितना मुगल काल में मिला था। मुगल राज्य संस्थापक बाबर ने स्वयं अपनी आत्मकथा ष्बाबरनामाश में पूर्ववर्ती भारतीय मुस्लिम शासकों की शिक्षा के प्रति उदासीनता का उल्लेख किया है । बाबर के अनुसार भारत में विद्यालयों व सभ्य समाज का अभाव है । उसका यह कहना ठीक नहीं है, लेकिन शायद उसकी यह अवधारणा उच्च शिक्षा के प्रति उसकी अभिरूचि की ओर संकेत देती है, जिसका उस समय शायद प्रचलन कम था।

मुगल बादशाहों ने शिक्षा के महत्त्व को समझा, उसमें से प्रायः सभी ने शिक्षकों व विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। बाबर को एक विद्वान शासक माना गया है और वह साहित्य का प्रेमी था। उसने दिल्ली में एक मदरसा स्थापित किया जिसमें इस्लाम की धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त गणित, भूगोल और नक्षत्र विज्ञान को पढ़ाए जाने की व्यवस्था की गई । ष बाबर द्वारा लिखी उसकी आत्मकथाश श्तुजुकदृए– बाबरीश के कारण उसको मध्यकालीन आत्मकथा लेखकों का सम्राट कहा जाता है। बाबर ने श्शुहरत – ए – आमश नामक एक विभाग खोल रखा था जिसका मुख्य काम प्रकाशन तथा नवीन विद्यालयों का निर्माण कराना था । इस प्रकार उसने शिक्षा – प्रसार को राज्य के कार्य का एक अंग बना दिया जिसको पूरा करना शासक का कर्त्तव्य था । बाबर ने दिल्ली के पुस्तकालय की सजावट के लिए अपने देश के सबसे सुन्दर चित्रों को एकत्रित किया था ।

हुमायूँ भी अपने पिता की भाँति साहित्य – प्रेमी था । हुमायूँ को पुस्तकों से बहुत लगाव था, उसने अपने अव्यवस्थित शासन – काल में भी उनको संगृहीत करवाने का अथक परिश्रम किया। इन संगृहीत पुस्तकों से शाही पुस्तकालय सुशोभित था । उसने दिल्ली में एक मदरसा भी बनवाया । अन्य भी कई मदरसों का निर्माण उसके शासन काल में हुआ । पुनरू भारत पर सत्तारूढ़ होने पर हुमायूँ ने शेरशाह के शेरमण्डल को पुस्तकालय के रूप में परिवर्तित कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश इसी पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई ।

अकबर का शासनकाल स्वर्ण युग के नाम से भारतीय इतिहास में विख्यात है और इस समय शिक्षा एवं साहित्य की जितनी वृद्धि हुई, वह सराहनीय है। उसके दरबार में नवरत्नों की शोभा सांस्कृतिक जगत को गौरवान्वित करती थी । अकबर ने शिक्षा के सभी क्षेत्रों में उदार प्रवृति का परिचय दिया । इस काल में हिन्दू–मुसलमान विद्यार्थी साथ–साथ एक ही विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करते थे। मुस्लिम शिक्षा के अतिरिक्त प्रथम बार सम्राट अकबर द्वारा हिन्दू शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया गया और इस पद्धति को प्रोत्साहित कर भारतीय विद्यालयों के उत्थान की चेष्टा की गई।ष मदरसों में प्रचलित पाठ्यक्रमों में परिवर्तन कर हिन्दू विद्यार्थियों को उनकी भाषा और संस्कृति की शिक्षा दिलाने का उचित प्रबंध किया गया । विद्यार्थियों को आत्म–निर्भर बनाने का प्रयास किया जाता था और यह विद्यार्थियों का दायित्व था कि वह निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार विषय को सीखे व समझे ।

दरअसल अकबर ने यह अनुभव किया कि इस्लाम की धार्मिक शिक्षा को, शिक्षा का मुख्य आधार मानकर चलना शिक्षा की प्रगति के लिए हानिकारक है। अकबर ने विभिन्न स्थानों पर मकतब और मदरसे खुलवाए, हिंदू पाठशालाओं और विद्यापीठों को सहायता दी तथा उदार धार्मिक विचारों के सद्रों को नियुक्त किया। अकबर ने शिक्षा में गणित, भूगोल, नीतिशास्त्र, नैतिकशास्त्र, गृहविज्ञान, शासन–व्यवस्था, चिकित्साशास्त्र, इतिहास आदि सभी विषयों की शिक्षा पर बल दिया। अकबर ने शिक्षा प्राप्त करने के तरीके में भी परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। उसका कहना था ष्इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए कि वह (विद्यार्थी) स्वयं ही प्रत्येक चीज को समझ सके । अध्यापक उसमें उसकी थोड़ी सहायता कर सकता है ।ष इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत प्रयत्नों के द्वारा भी शिक्षा–संस्थाएँ चलाई गई थी । इस तरह की संस्थाओं में दिल्ली में माहम अनगा, गाजीउद्दीन और ख्वाजा मुइन द्वारा स्थापित मदरसे और

शाहजहांबाद का मौलाना सफरूद्दीन का मदरसा प्रमुख थे। शाही पुस्तकालय में अनेक विषयों की पुस्तकों को सुरक्षित रखा जाता था और सभी भाषाओं की पुस्तकों को अलग–अलग रखा जाता था जिससे उनकी खोज में असुविधा न हो। भारतीय कला प्रेमी फारसी कवि फैजी उस पुस्तकालय का अध्यक्ष था ।

विद्वानों को आर्थिक सहायता जागीरों अथवा नकद रूपयों के रूप में दी जाती थी। मौखिक वाद–विवाद के लिए फतेहपुर सीकरी के इबादतखाने में अनेक विद्वान जुड़ते थे और सूक्ष्म विषयों की आलोचना की जाती थी। आगरा में दूर–दूर से विद्यार्थी आकर विद्याध्ययन करते थे तथा प्रख्यात विद्वानों के भाषण सुनते थे। जहाँगीर ने भी अपने पूर्वजों की भांति शिक्षा व साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। उसने कई मदरसों का निर्माण कराया और । उसके काल में कुछ उजड़े मदरसों का पुनरूद्धार किया गया । विशेष नियम बनाकर जहाँगीर ने संतानहीन व्यक्तियों की सम्पत्ति को राज्याधिकार में लेकर शिक्षा – संस्थाओं को दिलवा दिया। उसको कलाकारों व साहित्यकारों से विशेष प्रेम था । उसने स्वयं बाबरनामा के कई अध्यायों की प्रतियाँ तैयार की थीं।

शाहजहाँ एक विद्वान था और विद्वानों का आदर करता था। दिल्ली में जामा मस्जिद के समीप शाहजहाँ ने एक राजकीय शिक्षा–संस्था का निर्माण कराया था। दारू – उल – बका एक ख्याति प्राप्त मदरसा था, शाहजँहा ने उसके पुनरुद्धार के लिए उसका पुनः निर्माण कराकर उसके संचालन के रूप में खानबहादुर मौलाना सदरूद्दीन को नियुक्त किया। आगरा व दिल्ली के विद्यालयों में उसने सुयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति की । शाहजहाँ का पुत्र दारा एक प्रसिद्ध विद्वान लेखक था । अरबी और फारसी के अतिरिक्त उसको हिन्दी तथा संस्कृत का ज्ञान था। संस्कृत की कई पुस्तकों का अनुवाद दारा ने स्वयं फारसी में किया। भारतीय संस्कृति का दारा पर पर्याप्त प्रभाव था । धार्मिक शिक्षा का पक्षपाती होते हुए भी औरंगजेब तत्कालीन मुस्लिम शिक्षा से संतुष्ट नहीं था । वह शिक्षा के व्यवहारिक रूप को अधिक पसन्द करता था और उस क्षेत्र में उसने कुछ सुधार भी किये। जीवन की विषम परिस्थितियों में व्यक्ति को स्वावलंबी सिद्ध करने में शिक्षा को सहायक होना चाहिये, ऐसा औरंगजेब का विचार था । पुस्तकालय में भी औरंगजेब ने प्रमुख धार्मिक पुस्तकों को संग्रहित किया और १फतवा – ए – आलमगीरी की रचना उसने स्वयं अपनी देख–रेख में करवाई थी। यह रचना शाही पुस्तकालय में रखी गई थी।

**मध्यकाल में हिन्दूओं की शिक्षा की व्यवस्था**

भारतवर्ष पर मुसलमानों का आधिपत्य होने से पहले यहां पर बौद्ध व ब्राह्मणीय शिक्षा की पर्याप्त व उन्नत अवस्था थी । किन्तु मुस्लिम शासकों की धार्मिक कट्टरता के कारण प्राचीन कालीन अनेक प्रसिद्ध विद्यालय नष्ट कर दिये गए तथा उनकी असंख्य पुस्तकों व ग्रन्थों को नष्ट कर दिया गया। तुर्क सेनापति बख्तियार खिलजी द्वारा नालंदा विश्वविद्यालय को नष्ट करना तथा धार्मिक ग्रन्थों को जलाना इसी तरह का एक उदाहरण था। यहां पर यह ध्यान देने वाली बात है कि भारतवर्ष की संस्कृति इतनी प्राचीन व सुव्यवस्थित थी कि उसको नष्ट कर सकना कोई सरल काम न था । मध्यकाल में भी हिन्द शिक्षा अबाध गति से आगे बढ़ती रही। जिन प्रसिद्ध नगरों में मुसलमान बडी संख्या में रहते थे या मुस्लिम शासन का केन्द्र अर्थात् राजधानी थी वहीं पर उनका प्रभाव ज्यादा देखने को मिलता था। भारत के वास्तविक हिन्दू शिक्षा की धारा इन्हीं ग्रामों से लेकर जंगलों में स्थित आश्र तक प्रवाहित होती रही। इतना ही नहीं भारतीय साधु–सन्तों व सामाजिक नेताओं ने बाह्य संस्कृति से अपनी संस्कृति को बचाने व उसके उत्थान के लिए सराहनीय प्रयास किये जिनके फलस्वरूप मध्यकाल में हिन्दू शिक्षा पूर्ववत बनी रही और मुस्लिम आक्रमणकारी भौतिक व आर्थिक हानि के अतिरिक्त इसे किसी प्रकार से प्रभावित न कर सके। मध्यकाल में मारवाड़, मथुरा, काशी, पटना, नदिया, उज्जैन, धार, विजयनगर व पाण्डीचेरी प्रमुख शिक्षा–केन्द्रों में गिने जाते थे जहाँ प्राचीन शिक्षा पद्धति प्रचलित थी ।

मध्यकाल में भारतीय साहित्य को जितने साहित्यकार मिले प्राचीनकाल में भी उतने नही मिले थे। कबीर, दादू नानक, जायसी, कुतबन, तुलसी, सूर, नन्ददास, बिहारी, भूषण, कल्हण सायण, माधव, विद्यारण्य आदि इसी समय के प्रमुख कवि व साहित्यकार थे। इस काल में पद्मावत, रामचरितमानस, सूर – सागर, रसिक – प्रिया, राजतरंगिणी आदि ग्रन्थों का सृजन किया गया। वेदों पर टीकाएं लिखी गई और दर्शनशास्त्र की शाखाएं जैसे, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त आदि के साथ–साथ जैन व बौद्ध दर्शन तथा तर्कशास्त्र की रचनाएं की गई। राज्य की ओर से हिन्दुओं की शिक्षा को संरक्षण प्राप्त नहीं था, लेकिन सामाजिक संगठनों द्वारा उस समय शिक्षा के संरक्षण व प्रसार का कार्य सम्पन्न किया गया । अतः इस संकट के काल में भी प्राचीनशिक्षा जीवित रही और अनेक ऐसे

साहित्यकारों को पैदा करने में सक्षम थी जिनकी कृतियां भारतीय साहित्य को अमर बनाएं हुए हैं। इस समय विद्यार्थी तत्कालीन प्रचलित भाषाओं का भी ज्ञान अर्जित करते थे। हिन्दू छात्रों के द्वारा प्रशासन में पद प्राप्त करने के लिए अरबी व फारसी का भी अध्ययन किया जाता था। इससे हिन्दू व मुस्लिम धर्म के मध्य समन्वय के भाव जागृत होने लगे ।

अतः मध्य काल में प्राचीन व मध्यकालीन शिक्षा व्यवस्थाएं एक–दूसरे के समानान्तर विकास कर रही थी । शासकीय प्रयत्नों के अलावा अभिभावक भी अपने बच्चों की आयु व परिस्थिति के अनुसार उनकी शिक्षा का स्वयं प्रबंध करते थे, और उनके प्रबंध संतोषजनक भी होते थे। एस० डब्ल्यू० थॉमस लिखते है कि षविश्व में भारत के समान ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ लोगों में शिक्षा के लिए स्वयं प्रेम हुआ हो और उसका लोगों के मस्तिष्क पर स्थाई और शक्तिशाली प्रभाव पड़ा हो। वैदिक काल के साधारण कवियों से लेकर यहां पर टैगोर जैसे उच्चकोटि के दार्शनिक हुए और देश में गुरू–शिष्य की परंपरा सदैव चलती रही।ष इतना ही नहीं प्रारंभिक व मध्यकालीन विद्यालयों में विद्यार्थी को नियत वर्षों तक पढ़ना पड़ता था । बुद्धिमान और चतुर विद्यार्थी थोड़े समय में ही योग्यता प्राप्त कर विद्यालय छोड़ सकते थे। उच्च शिक्षा के लिए भी व्यवस्था की गई थी। बड़े–बड़े विद्यापीठों में स्नातक का पाठ्यक्रम 10–12 वर्ष तक भिन्न–भिन्न होता था। किंतु वार्षिक परीक्षाएं नियमित रूप से नहीं होती थी । प्रत्येक विषय का सकता था । विद्यार्थियों के शास्त्रीय वाद–विवाद हुआ करते थे, अध्यापक विद्यार्थी को अपने विषय की योग्यता का प्रमाण पत्र दे जिनमें उनकी स्नातक परीक्षा हो जाया करती थी । उपाधि मिलने पर वह अपने विषय का विद्वान घोषित हो जाता था । भारतीय शिक्षा ने विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड विद्वानों को उत्पन्न किया जिन्होंने अपने ज्ञान से स्वदेश तथा विदेश को आलोकित किया । विदेशों से अनेक लोग भारतीय विद्वानों की ख्याति से प्रभावित होकर यहां अध्ययन करने के लिए आया करते थे। प्राचीन शिक्षा ने ही भारतीय संस्कृति की विरासत को सुरक्षित रखा तथा उसे समृद्धशाली भी बनाया। प्राचीन शिक्षा के अनेक तत्व आधुनिक शिक्षा पद्धति के लिए आज भी समान रूप से आदर्श व अनुकरणीय बने हुए है भारत का प्राचीन साहित्य अत्यन्त विशाल है। यह प्रधानतः संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध किया गया। परम्परा के अनुसार ब्रह्मी लिपि की उत्पत्ति स्वयं ब्रह्म से हुई है। नारद स्मृति में कहा गया है कि ष्ब्रह्म यदि लिपि द्वारा उत्तम नेत्र का विकास नहीं करते तो लोगों की शुभ गति नहीं होती ।''
''ना करिष्यति यदि ब्रहा लिखितंचक्षु रूतमम् ।
तत्रेयमस्य लोकस्य ना भविष्यत शुभां गातिम् । ।''
संस्कृत भाषा हमारी राष्ट्रीय निधि तथा हमारी संस्कृति का मुख्य वाहन है । अतः भारतीय संस्कृति के ज्ञान के लिए संस्कृत में लिखे गये साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक है। अतः मध्यकालीन मुस्लिम शासकों ने भारतीय ग्रन्थों का फारसी व अरबी भाषा में अनुवाद करने को प्रोत्साहन दिया। इतना ही नहीं अनेक ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी गई । हिन्दू शिक्षा प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा के अनुकूल उच्च स्तर पर इस काल में भी विद्यमान रही । धार्मिक एकता के प्रयास द्वारा प्रेरित कुछ मुसलमानों ने भी भारतीय साहित्य में योग दिया। कबीर, जायसी, कुतबन, रसखान आदि प्रमुख मुसलमान कवि थे जिनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य जगत की अमूल्य निधि हैं ।
अतः प्राचीन कालीन व मध्यकालीन शिक्षा व साहित्य ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाया तथा इस समय छात्रों का उद्देश्य आधुनिक युग की भांति उपाधियों के पीछे दौड़ना नहीं था।

वे ज्ञान के सच्चे पिपासु थे। अपने अध्ययन को वे जीवन – पर्यन्त संजोये रखते थे। उनकी प्रबल अभिलाषा अपने देश की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने की थी और यही उनके समस्त शैक्षणिक क्रियाकलापों का मूलमंत्र था । शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक सुख व निपुणता को प्रोत्साहित करना था । गीता में वर्णित है कि ष्स्वे– स्वे कर्माणिभिरतः संसिद्धिं लभते नरः । अर्थात् अपने–अपने कर्मों में रत (कुशल) मनुष्य ही सिद्धि को प्राप्त करता है ।

**निष्कर्ष :**

मध्यकालीन भारत की शिक्षा व्यवस्था अपने समय के लिए कुछ मायनों में श्रेष्ठ थी दृ नैतिकता, गुरु–शिष्य संबंध, और पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही। किंतु यह व्यवस्था सामाजिक विषमता, वैज्ञानिक जड़ता और तकनीकी पिछड़ेपन से ग्रस्त थी।
इस युग की शिक्षा केवल धार्मिक और विशिष्ट वर्गों तक सीमित रह गई, जिससे सामाजिक समरसता और समग्र विकास में बाधा पहुँची। आगे चलकर अंग्रेजों ने जब आधुनिक शिक्षा प्रणाली की नींव रखी, तब इस पारंपरिक व्यवस्था की कमियाँ और भी उजागर हुईं।

**सुझावात्मक दृष्टिकोण :**

यदि मध्यकालीन भारत की शिक्षा को आधुनिक संदर्भ में देखें, तो यह स्पष्ट होता है कि – शिक्षा को सर्वसुलभ, व्यावसायिक, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जोड़ना आवश्यक था।

समावेशी और रचनात्मक शिक्षा प्रणाली की अनुपस्थिति ने भारत के बौद्धिक विकास को सीमित किया।

शिक्षा समस्त मानव जाति के सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन के कल्याण व विकास को आधार प्रदान करती है। अनादिकाल से लेकर वर्तमान समय तक सभ्यताओं के नित नए रूप बदले हैं, यदि कुछ नहीं बदला तो वह है मानव विकास की अनवरत यात्रा। मानव को अधिक परिपक्व, समझदार व प्रबुद्ध बनाने में शिक्षा की भूमिका हर युग व हर समय बेहद प्रभावी रही है। शिक्षा चाहे वह अनौपचारिक रूप में घर–बाहर, माता–पिता, दादी–नानी, पड़ोसियों द्वारा सिखाएं गए सबक हो या औपचारिक रूप में संस्थाओं जैसे– गुरुकुलों या मदरसों द्वारा प्रदान की जाती हो, निस्संदेह इसका महत्व मानव के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में दिखाई देता है । शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने मार्ग । में आने वाली कठिनाइयों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध करता है। वह अपने अनुभवों के माध्यम से मिली शिक्षा के द्वारा इन कठिनाइयों को हल करने में सक्षम हो पाता है ।

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची**

1. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, के.सी. श्रीवास्तव, षष्ठम आवृति (1998) प्रकाशक– यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 764
2. मनृस्मृति, श्री कुल्लूक भट्ट, प्रकाशक– जय कृष्ण दास हरिदास गुप्त, चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस सिटी (1772) अध्याय–2, श्लोक संख्या – 118, पृष्ठ संख्या 46
3. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, के.सी. श्रीवास्तव, षठम आवृति (1998), प्रकाशक यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या–774
4. अलबेरूनी लिखित श्अलबरूनी का भारतश अनुवादन–श्री रंजनीकांत शर्मा, एम०ए० प्रकाशक – आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, मालवीय नगर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण (1960), पृष्ठ संख्या – 119
5. भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, एस०पी० गुप्ता एवं अल्का गुप्ता, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद (2009), पृष्ठ संख्या – 234
6. भारतीय शिक्षा का इतिहास, डॉ० सरयू प्रसाद चौबे, प्रकाशक– रामनारायण लाल, संस्करण–2000, पृष्ठ संख्या – 167
7. भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, एस०पी०गुप्ता एवं अल्का, गुप्ता शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद (2009), पृष्ठ संख्या–240
8. शिक्षा के दार्शनिक ऐतिहासिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, एम०पी० चौबे, इंटरनेशनल संस्करण, मेरठ (1990), पृष्ठ संख्या–23
9. भारतीय शिक्षा का इतिहास, डॉ० सरयू प्रसाद चौबे, प्रकाशक, रामनारायण लाल, प्रथम संस्करण – 2000, पृष्ठ संख्या–184
10. उपरोक्तानुसार, पृष्ठ संख्या–185
11. उपरोक्तानुसार, पृष्ठ संख्या–187
12. मुगलकालीन भारत, डॉ०एल०पी० शर्मा, छठा संस्करण, प्रकाशक – लक्ष्मीनारायण अग्रवाल एजुकेशनल पब्लिशर्स एडं बुक्स, आगरा, पृष्ठ संख्या–397
13. भारतीय शिक्षा का इतिहास, डा० सरयू प्रसाद चौबे, प्रकाशक – राम नारायण लाल, संस्करण – 2000, पृष्ठ संख्या– 190
14. उपरोक्तानुसार पृष्ठ संख्या– 192
15. मुगलकालीन भारत, डॉ० एल०बी० शर्मा, छठा संस्करण, प्रकाशकश लक्ष्मीनारायण अग्रवाल एजुकेशनल पब्लिशर्स एंड बुक्स, आगरा, पृष्ठ संख्या–398
16. भारतीय शिक्षा का इतिहास, डॉ० सरयू प्रसाद चौबे, प्रकाशक – राम नारायण लाल इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2000, पृष्ठ संख्या – 194
17. मुगलकालीन भारत, डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी लिमिटेड, आगरा (1953), पृष्ठ संख्या–269

18. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, के०सी० श्रीवास्तव, प्रकाशक यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, षष्ठम आवृति–1998, पृष्ठ संख्या – 783
19. श्रीमद भगवदगीता, स्वामी रामसुखदास, प्रकाशक गोविन्द भवन, कार्यालय– गीता प्रेस, गोरखपुर, सोलहवां संस्करण, अध्याय–18, श्लोक संख्या – 45, पृष्ठ संख्या – 1086